यह
हिन्दी
हिन्दवी है

लेखक :
बदरी नारायण सिनहा

प्रकाशक :
श्री गणपत प्रकाशन
पटना

मूल्य १० पैसे

हिन्दी के वस्तुत: अग्रगणय संरक्षक

डा० श्री लक्ष्मीनारायणा सुधांशु जी

को

एक शुभचिंतक की ओर से प्रतिक स्वरूप

- बदरी

यह हिन्दी हिन्दवी है।

यह हिन्दी है। भारत की भारती है। हिन्दुस्तान की बोली है। कहीं से लादी गई भाषा नहीं है। उपजी वस्तु है। यह वह भाषा है जिसका साहित्य परिपूर्ण है नेपाल की सरहद और तराई की मैथिली के विद्यापति से, मुजफ्फरपुर के अयोध्या प्रसाद खत्री के प्रारंभिक गद्य से, वाराणसी के इर्द-गिर्द के तुलसीदास के 'मानस' और 'विनय-पत्रिका' से, रमता योगी कबीर जुलाहे के तानों से, मध्य प्रदेश के वृन्दावन लाल वर्मा, माखन लाल चतुर्वेदी के कतिपय ग्रन्थों से, राजस्थान की दीवानी, प्रेम-बिकानी मीरा के भजनों से, गुजरात के नरसिंह के संत-स्वर से, महाराष्ट्र के भूषण की ललकार से और अब दक्खिन भारत के रांगेय राघव के "घरौंदे" से, बालकृष्ण राव के विवेचन से, मुगल दरबार के रहीम से, जायसी के "पद्मावत" से, पुरानी हस्तिनापुरी के चंद बरदाई के "पृथ्वीराज रासो" से, खुसरो से, दिल्ली, शहर सुहाने, के रसखान द्वारा ब्रजविहारी के पूजन से और औरंगजेब की प्रिया-पास भेजी गई शुद्ध पाती से। सभी क्षेत्रीय बोलियाँ और भाषाएँ हिन्दी में अटी हैं। हिन्दी इनकी संपदा से अदा भरती रही है, आज ही नहीं, आज से करीब-करीब हजार वर्ष पहले जब प्रांतीयता, क्षेत्रीयता या राजनीति के दावपेंच न थे। वर्गमील में एक साथ राष्ट्रभाषा, राजभाषा, मातृभाषा की परिधि सीमित नहीं की जा सकती। मुगल या मुसलमान बादशाहों के दरबार में उठ खड़ी बोली, दरखास्त, आहतों, पीड़ितों, न्याययाचकों की बोली, सामतों की भी कंठवाणी बनी, किसी साजिश के बिना, नवरत्नों में एकरत्न रहीम ने ज्ञान बिखेरा इसके ही दोहों में। रहीम मंत्री थे, सिपहसालार थे, अन्त में वीरगति को भी प्राप्त हुये पर कवि थे, दार्शनिक थे, ज्ञानी थे, हिन्दी के उपासक थे।

यह वही हिन्दी है। न उर्दू से अलग, न संस्कृति या व्याकरण में, एक साथ फली-फूली, शुरू में "हिंदवी" कहलाने वाली, न मैथिली, राजस्थानी, बुंदेलखण्डी, भोजपुरी, मगही, अंगिका, अवधी से भिन्न संस्कृति, प्रेरणा शब्द से अभिन्न। अंतर है केवल क्रिया और कर्त्ता के 'ने' चिन्ह तथा स्त्रीलिंग, पुलिंग में। तामिल, तेलगू, मलयालम से यह भिन्न है परन्तु संस्कृति और प्रेरणा में एक ही है। तामिल को छोड़कर प्रायः सभी क्षेत्रीय बोलियाँ संस्कृत की पुत्रियाँ हैं, और हिन्दी सबों से अधिक विस्तृत रही, बस इतना ही अंतर है। देवनागरी लिपि में सभी लिखी जा सकती है। बंगला और मैथिली एक ही है। अभी तक यह विवादग्रस्त है कि चंडीदास मैथिली और बंगला में किसके कवि थे। मैथिली और बंगला के व्याकरण, क्रियापद एक ही है, इनकी लिपि एक सी ही है, संस्कृति और प्रेरणा तो खैर तनिक भी भिन्न नहीं। मैथिली के रत्न यदि हिन्दी के हैं, तो बंगला के भी। रवीन्द्र को कवीन्द्र हिन्दी-क्षेत्र में माना गया, इनके पथ पर हिन्दी की कविताएँ दौड़ीं, शरतचंद्र, बंकिमचंद्र के उपन्यासों की पार्थिवता हिन्दी की कथाओं में उतारी गई। कृत्तीवास की या कम्ब की "रामायणवली" "रामचरितमानस" से संबद्ध है। वैश्यवर्ग की ही बोली हिन्दी नहीं है। तामिल के राजगोपालचारी का यह भ्रामक मत है। सारे देश में, सच में, काश्मीर से कन्या कुमारी और कन्या कुमारी से असम तक यदि एक संस्कृति है, आर्य अनार्य, द्राविड़ की घुली-मिली संस्कृति, जिसमें यूनानी, शक, हून, काबुली संस्कृतियाँ भी मिल गई हैं, यहां तक क्रिस्तानी, डची, फ्रेंच, अंग्रेजी प्रेरणाएं भी, तो सम्पूर्ण देश में हिन्दी ही एक ऐसी बोली है या भाषा जो सर्वत्र समझी जाती है, जिसके द्वारा संपर्क स्थापित हो सकता है, हो रहा है।

रही संपदा, समृद्धि की बात। मुद्रण, तार, बेतार, रेल, आवागमन के साधन, वर्त्तमान साधन, इस देश में बस एक शताब्दी भर से ही आये हैं। १८५३ ई० में ही रेल की पटरियां पहली बार बिछी थीं। पहले

भाषा, बोली किन साधनों से प्रसार पाती थी ? केवल भ्रमण से, तीर्थाटन से या एक राज्य के दूसरे राज्य पर आक्रमणोपरांत या एक राज्य के दूसरे राज्य में विघटन, विसर्जन से। इसलिये, हिन्दी का प्रचार हुआ संन्यासियों से, एक तारा पर, खंजरी पर। इस दृष्टि से हिन्दी पवित्र आत्माओं की, शुद्ध प्रचारकों, संतों की बोली, भाषा है। यही बात संस्कृत के आचार्य-महर्षियों के साथ रही है। वह अकारथ नहीं ऋचा रचते थे, सत्य की आनंदानुभूति में ही काव्य का सृजन करते थे, आश्रमों में ज्ञानार्थियों के बीच सत्य, उपलब्धि का वितरण करते थे। सूर, मीरा, कबीर, नानक, रसखान सभी सिद्ध मनुष्य थे। हिन्दी इनकी ही वाणी है।

हिन्दी हिन्दुओं की बोली नहीं है। सिख धर्मावलंबियों ने न मूर्ति न अन्य ही अवतार को पूज्य करार किया है बल्कि 'गुरुग्रन्थ' को ही 'ग्रन्थ साहिब' आराध्य माना है। 'ग्रन्थ साहिब' ज्ञान ग्रन्थ है। इनमें हिन्दी की रचनाएँ हैं, नानक की और यहाँ तक रविदास, एक चमार की भी। हिन्दी और गुरुमुखी में कोई झगड़ा नहीं। गुरुमुखी के नाम पर पंजाब, जहाँ आर्य संस्कृति ऊगी और जहाँ से फैली; उस पंजाब के विभाजन की माँग न सांस्कृतिक, न साहित्यक ही है वरन् राजनैतिक है। रहीम, खुसरो, जायसी, कबीर की पदावलियों को किलकारियाँ हिन्दू धर्म के नाम पर नहीं मिली हैं। फोर्ट विलियम में अंग्रेजी प्रशासकों और देश के कई भागों में चोंगाधारी पादरियों ने हिन्दी को स्वीकृत ही नहीं किया था वरन् समृद्ध भी। यह हिन्दी वह हिन्दी है।

बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान अर्थात् २४ करोड़ लोगों की ही यह भाषा नहीं, बगल के महाराष्ट्र, गुजरात, बंगाल, उड़ीसा, हैदराबाद राज्यों के अधिकांश वासिन्दों की यह भाषा है। २७ करोड़ की यह इस प्रकार भाषा होती है। ४४ करोड़ हिन्दुस्तानियों की यह

अब संविधान स्थापित, जन-प्रतिनिधियों द्वारा स्थापित राष्ट्रभाषा, राज-भाषा है। इस दृष्टि से यह अद्वितीय भाषा, बोली है। अंग्रेजी विश्व की सबसे अधिक प्रचलित भाषा है। सभी महादेशों में खूब चलती भी रही है। यूरोप में इंगलैण्ड, आयरलैण्ड, अमरीका में कनाडा, संयुक्त-राज्य, सम्पूर्ण आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड में तो यह एक तरह से संपर्कित भाषा ही नहीं अपितु मूल वासियों की और इंगलैण्ड से गई टोलियों और इसके वंशजों की भाषा है। अफ्रीका या उत्तर अमरीका, भारत, पाकिस्तान चीन, रूस, मंगोलिया, फ्रांस, जर्मनी, या जापान में वाणिज्य, पुराने उपनिवेश की परिपाटी और राज्यकार्य के कारणों से भी प्रचलित है। इस गणना से यह सभी भाषाओं से आगे है परन्तु मातृभाषा यह इंगलैण्ड कनाडा, आस्ट्रेलिया, अमरीका के अधिकांश या मूल वासियों की ही है। अन्य देशों में यह राजभाषा है परन्तु वहाँ बहुत से लोगों की मातृभाषाएँ एक दूसरी है, स्पेनिश, फ्रेंच, जर्मनी, लैटिन, जैसे अमरीका के संयुक्त राज्य में। हिन्दी ही विश्व की, संख्या की दृष्टि से, नंबर एक भाषा है जो एक साथ ही मातृभाषा, राजभाषा, राष्ट्रभाषा है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के आँकड़ों में यह चौथी भाषा कही गई है। इन आँकड़ों में सुधार की जरूरत है क्योंकि जनगणना के समय क्षेत्रीय रागों के कारण बहुत-सी जगहें हिन्दी को प्राथमिकता न दी गई थी।

हिन्दी क्रांति, जनजागरण, देशोत्थान की ऐतिहासिक बोली है। गुरु नानक, संत कबीर ने सामाजिक चेतनाओं को बल दिया था। रसखान ने ब्रजविहारी की लीलाओं को गा-गाकर लोक-कल्याण की भावना जगाई थी। महात्मा गाँधी ने मंच पर, पत्रिकाओं में, सभा प्रार्थना, प्रवचन में हिन्दी-माध्यम से अपार जन-समुदाय को झंकृत किया था। प्रथम राष्ट्रपति ने जीवनी लिख कर हिन्दी गढ़ी थी। विनोबा, दक्खिन भारतवासी ने हिन्दी में अपने नये-नये आह्वानों को संजोया है। नानक पंजाब के थे, कबीर जुलाहा थे, रसखान दिल्ली के पठान थे, गाँधी गुजरात

के थे, विनोबा दक्खिन भारत के हैं, पर इन्हें प्रदेश, क्षेत्र की बोलियाँ सीमाबद्ध न रख सकीं।

हिन्दी सबों की भाषा है, सबों का साहित्य है, सबों की बोली है। गुजरात के 'आप कियौ हो, करते हो' उत्तर प्रदेश की खासी 'तुम तुमाव' और बिहार के 'किहिस था' सबों को लेकर पनपी है और फूल उठी है। बंगला-मिथिला की मृदुलता, भोजपुरी की मर्दानगी, मगही की पारिवारिकता, अवधी की आत्मीयता, राजस्थानी, बुंदेलखण्डी की पौराणिकता रोंगटे खड़े करने वाली क्षमता, महाराष्ट्र की रण-भेरी और दक्खिण भारत की दृढ़ता, सभी हिन्दी में है। भारत की जितनी भी सामाजिक सांस्कृतिक इकाइयाँ हैं, जितने भी पहनावे-ओढ़ावे हैं, जितनी भी बोलियाँ है, जितने भी स्पन्दन हैं, जितनी भी शक्तियाँ हैं, जितनी भी खामियाँ हैं, सभी उसमें विद्यमान हैं। हिन्दी सागर है, महासागर है, 'इंडियन ओसन' है जिसमें सब मिल जाती हैं।

हिन्दी हिन्दवी है जैसे अरबी, फारसी, अंग्रेजी, राष्ट्र की द्योतिका, राष्ट्र की पहचान, इसलिये ही यह राष्ट्रभाषा, राजभाषा है।

हिन्दी के लिये आज त्याग और मनन दोनों की जरूरत है। त्याग संकीर्णता का, मनन इस भाषा और साहित्य का। नगरों, विद्यालयों, कक्षों में ही इस त्याग, इस मनन की जरूरत नहीं वरन् फैली हुई ग्राम्य-स्थली, वनस्थली, भारत के ओर-छोर फैली घनस्थली में इसकी आवाज बुलन्द करती है, दिल खोलकर मजहब, धर्म, शाखा, पंथ का त्याग कर, भारत की भारती की अपरिमित शक्तियों का मनन कर। हिन्दी अंग्रेजी के समक्ष विज्ञान वार्ता को लेकर अभी नहीं ठहर सकती है, यह हकीकत है। बहुत सी विद्याओं में यह बंगला, मराठी, तेलगू के समक्ष नहीं ठहर सकती है, यह भी एक हकीकत है पर यह पचास वर्षों में, स्वतंत्रता के बाद तो और, बहुत सी अपूर्तियों को पूर्ण कर चुकी है, करती जा रही है।

माना, समृद्धिशालिनी नहीं है, जो सर्वथा सत्य भी नहीं, तो भी इसलिये इसे गृह, आँगन से निकाल दें हम ? नहीं, इसे हमें अपने दिल का दर्द, मस्तिष्क को उपज, हाथ की ताकत और ओठों की मिठास देनी है।

यह मांग इतनी ही प्रखर है जितनी खेत की फसल बढ़े, एकता के सूत्र में सम्पूर्ण देश बँधा रहे, छिपे स्वर्ण राष्ट्र को मिलें, सुरक्षा निमित्त सब कटिबद्ध रहें, चूंकि भाषा राष्ट्र की जड़ है। अंग्रेजी अमरीका के गेहूं सदृश दूसरों की मुहताज की निशानी है, अपने अन्न, वसन स्वावलंबन अस्तित्व के लिये जरूरी है। यह कहना कि देश भाषा से बड़ा है, एक सतही आवाज है, खोखली भी, चूंकि देश क्या है, राष्ट्र है, राष्ट्र क्या है एक संस्कृति है, एक इकाई है, यदि दृष्टिकोण ही अक्षुण्ण नहीं, फिर राष्ट्र क्या, देश क्या ? और प्रत्येक राष्ट्र की अपनी भाषा होती है, चूंकि उसमें उसका इतिहास बिना मिलावट के जीवित रहता है, उसकी धड़कन उसकी छवि, उसकी तसवीर होती है। भाषा सरहद है राष्ट्र की संस्कृति की, इकाई की। नायक, सिपहसालार, अमर नहीं होते, उनसे संबंधित काव्य अमर होता है। इसलिये, आज भारत की भारती को सींचना है, खाद देनी है, जैसे खेतों की फसल बढ़ानी है, कारखानों के उत्पादन बढ़ाने हैं, नहरें खोदनी हैं, चटट्ान काटनी हैं, अन्यथा कुछ ही वर्षों बाद विदेशी भाषा घुसपैठियों की नाई इकाई ढाह देंगी, कुछ इसने ढाह भी दी है, युग-युग, आदि काल से जूझती परन्तु बची राष्ट्र-इकाई ढह जायेगी, अंततः विलीन हो जायेगी, जिस प्रकार तुर्की, यूनानी, मिस्र-देशीय इकाइयाँ आज ध्वंसावशेष भर हैं, इन दिनों बहुत से देशों का स्वातंत्र्य कोरा आडम्बर मात्र है, अपने राष्ट्रपति हैं। अपनी ध्वजा है, परन्तु दरअसल, दूसरों के इशारों पर ही ये रहते हैं। वैसा स्वातंत्र्य नहीं चाहिए। संपन्न, सुदृढ़ राष्ट्र की कल्पना, योजना अपनी पीढ़ी या पांच-दस वर्षों की ही नहीं होती है। सच्ची योजना, सघन कल्पना पचास, सौ वर्षों की होती हैं। सोचें, देश की हालत पचास, सौ वर्षों बाद क्या होगी ?

सच्चा चिंतक, राष्ट्र-नायक अपनी पीढ़ी की ही नहीं पर पौत्रीय पीढ़ी को, इसके बाद की पीढ़ी के मंगल, भविष्य को सुदृढ़ करती हैं।

हिन्दी बंगला, असम की तरुणाई, मिथिला की मधुरिमा, भोजपुर की बहादुरी, मगही की मित्रता, अवधी, बुंदेलखण्डी, मराठी, राजस्थानी उर्दू की विभूतियाँ मांगती हैं।

हिन्दी मांगती है समस्त भारतवासियों के खून पसीने, सपने को। इसलिये बेरोक, बेशर्त इन तकाजों को कबूल कर हिन्दी भाषा को गढ़ें, हिन्दी साहित्य को सजें। यह आज हमारा नारा है।

"आज तक की"
से

बदरी
२३–११–६५